इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी

सूरज पालीवाल

इक्कीसवीं सदी का पहला दशक

और हिंदी कहानी

प्रो. सूरज पालीवाल

सूरज पालीवाल

जन्म : मथुरा जिले के गांव बरौठ में। प्रारंभिक शिक्षा गांव में तथा उच्च शिक्षा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

प्रकाशित कृतियां : टीका प्रधान, जगंल (कहानी संग्रह), फणीश्वरनाथ रेणु का कथा संसार, रचना का सामाजिक आधार, संवाद की तह में, आलोचना के प्रसंग, मैला आंचल : एक विमर्श, साहित्य और इतिहास-दृष्टि, महाभोज का महत्त्व, समकालीन हिंदी उपन्यास, हिंदी में भूमंडलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध (आलोचना)।

- दस वर्षों तक 'वर्तमान साहित्य' के संपादक मंडल में तथा अब 'इरावती' के प्रधान संपादक।

- 'स्वाधीन भारत के हिंदी उपन्यासों में जातीय उभार के सामाजिक-राजनीतिक कारण' यू.जी.सी. की बृहत् शोध परियोजना।

पुरस्कार : डॉ. रामविलास शर्मा आलोचना पंजाब कला एवं साहित्य अकादमी पुरस्कार, प्रेमचंद सम्मान।

संप्रति : अध्यक्ष एवं अधिष्ठाता, साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

आलोचना में समय को खोज और उतार पाना आसान काम नहीं होता। समय की प्रवृत्तियां इतनी व्यापक, बहुविध और उलझी हुई होती हैं कि उसके भीतर से सिरे को पकड़कर उसकी गुत्थियों को सुलझा पाना अच्छों-अच्छों की सांस को फुला देता है, जिससे घबराकर लोग तुरंत जरूरी सवालों को छोड़कर अपने 'कला राग' पर लौट आते हैं। सूरज पालीवाल के आलोचक की यह खासियत रही है कि वे अपने विश्लेषणात्मक और विचारपूर्ण गद्य लेखन में अपने समय के जरूरी और केंद्रीय सवालों से मुंह नहीं मोड़ते। वे उनसे सीधे-सीधे भिड़ते हैं। समय की चुनौतियों को वे अखाड़े में द्वंद्व के लिए तैयार पहलवान की तरह स्वीकार करते हैं। अपने समय की शिनाख्त करते हुए सूरज पालीवाल अपनी नजर भविष्य पर रखते हैं और वर्तमान को केंद्र में रखते हुए जरूरत पड़ने पर पीछे लौटने में भी कोई गुरेज नहीं करते। इस तरह उनकी आलोचना में समय अपनी समग्रता में आता है यद्यपि उसका केंद्र वर्तमान ही रहता है। इसी तरह उनकी कथा साहित्य-विवेचना का देश, सामान्यतया हिंदी प्रदेश रहता है किंतु प्रसंग की जरूरत के अनुसार वे हिंदीतर भारतीय साहित्य और विदेशी रचना संसार को संदर्भबद्ध करने से भी नहीं चूकते।

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

के विवादों को जिन्होंने मुझे रचनात्मक

ऊर्जा प्रदान की

अनुक्रम

भूमिका	7
अलग अंधेरे में जीवन-राग	10
प्रेम और यथार्थ के ताने-बाने में जानकी पुल	19
अकेले रहने की उत्कट आकांक्षा	25
अल्हड़ सपने और स्त्री जीवन	35
परंपरागत सौंदर्य प्रतिमानों के प्रतिरोध	43
ऊबे हुए सुखी जीवन से अलग	52
स्मृतियों में वह सब	60
भीतर के मरुस्थल को उकेरने की ज़िद	66
हमारा समाज और स्त्री जीवन का यथार्थ	73
कब तक नचायेंगी राधा को रंगमहल में	82
दाम्पत्य सुख के कुंठित सपने	88
जातिगत संस्कारों की लू के बवंडर	95
आजादी की पूर्व संध्या में तिलमिलाते युवकों की व्यथा-कथा	102
मुक्ति के अनुपम राग की कामना	109
शर्म से तार-तार बंजर रिश्ते	115
बाजार की ताकत	124
आदिवासी समाज : नैतिक अनैतिक के बीच स्त्री	132
भरभराकर गिरते सपनों का आख्यान	142
अपने समय और इतिहास की पहचान	155

ज़िंदगी के क्विज़	164

भूमिका

जून, 2007 से इक्कीसवीं सदी के पहले दशक की हिंदी कहानियों पर आलेखों का प्रकाशन 'वर्तमान साहित्य' पत्रिका में आरंभ हुआ था। तब सोचा भी नहीं था कि इन आलेखों से युवा पीढ़ी के कहानीकारों के मूल्यांकन की प्रक्रिया का प्रारंभ होने जा रहा है। एक विचार मन में जरूर आया था कि युवा पीढ़ी जो अपनी तरह से कहानी में प्रयोग कर रही है, भाषा को नयी अर्थवत्ता दे रही है तथा अपने समकाल को जो इक्कीसवीं सदी का आगाज भी है, को अपने अनुभव के साथ रच रही है - को समग्रता में समझा जाये। इस पीढ़ी की जिम्मेदारी यह थी कि वह हिंदी कहानी को आरंभ के सौ साल बाद नये सिरे से आगे बढ़ा रही थी। उसकी यह भी जिम्मेदारी थी कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में सोवियत संघ के विघटन, उदारीकरण के आगमन तथा सांप्रदायिक ताकतों के सत्ता में आने के बाद के समाज तथा उसकी युवा पीढ़ी के सपनों को वे किस रूप में आंकना चाहते हैं ? युवा पीढ़ी से यह आशा तो निश्चित रूप से की जाती है कि वह बहुत पीछे नहीं तो पिछले दशक की स्थितियों का मूल्यांकन अपनी तरह से कर इक्कीसवीं शताब्दी के पहले दशक के सपने और यथार्थ को रचेगी। मैंने जब युवा पीढ़ी की कहानियों को उन पर लिखने के लिए पढ़ना आंरभ किया तब मुझे लगा कि इस दौर में बहुत कम कहानीकार ऐसे हैं जिनके पास राजनीतिक दृष्टि है। अधिकांश कहानीकार अपने अनुभव जगत को भाषा या शिल्प के चमत्कार के साथ रूपायित कर रहे हैं। जाहिर है कि हर नयी पीढ़ी अलग दिखने के लिए अपनी नयी भाषा गढ़ती है, गढ़नी भी चाहिए, इस युवा पीढ़ी के पास बहुत अच्छी और टटकी भाषा है पर भाषा का नयापन वैचारिक दृष्टि के अभाव में बहुत देर तक साथ नहीं देता। अपनी आरंभिक कहानियों से कोई भी कहानीकार भाषा या शिल्प से मोहित कर सकता है, पर बाद में तो उसकी अपनी वैचारिक दृष्टि और जीवन को देखने का यथार्थवादी सोच ही अच्छी और टिकाऊ कहानियां लिखवाने में सहायक होता है। इस पीढ़ी पर यह आरोप कुछ हद तक सही है कि वैचारिकता के अभाव में इन्होंने कहानियों को अपनी जिद के साथ लिखना आंरभ किया इसीलिए बहुत कम कहानियां लिखने के बाद रिक्तता का अनुभव स्वयं को होने लगा।

इक्कीसवीं शताब्दी के पहले दशक की हिंदी कहानियों को हाथोंहाथ लिया गया। कुछ कहानीकारों के